6593

जनवरी १९८४
वर्ष ७ : अंक ९

# तित्थयर

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

# Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram: PEARLMOON Telephone : 22-4110 22-3323

---

# The Bikaner Woollen Mills

**Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets**

*Office and Sales Office :*

**BIKANER WOOLLEN MILLS**

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

*Main Office :*

4 M er Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

*Branch Office :*

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

# तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक ६

जनवरी १९८४

□

संपादन

**गणेश ललवानी**

**राजकुमारी बेगानी**

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

**जैन भवन**

पी - २५, कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

**सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स**

२०५, रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७०००००७

## सूची

चेलियाणा की सराक संस्कृति २६१

दीप-ज्योति/आत्म-ज्योति २६५

पाटलीपुत्र की प्राचीन जैन कला २६७

मध्य भारत का जैन पुरातत्व २७०

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २७६

स्वर्गीय कस्तूरचन्द जी ललवानी २८३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८७

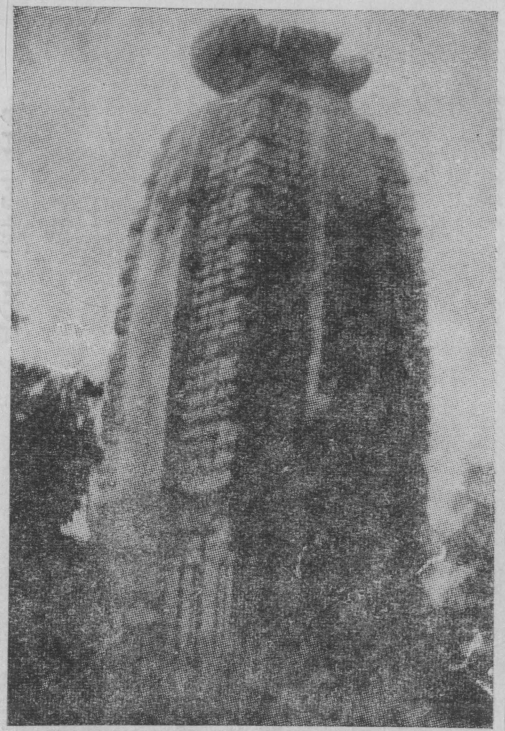

चेलियामा से मात्र मील भर दूर पलाश-वन में मस्तक उठाए आज भी खड़ा है सराक संस्कृति के निदर्शन स्वरूप एक विशाल मंदिर।

पृ० २६१

चेलियामा से काफी दूर रक्षतपुर ग्राम में पड़ी हुयी है क्षय हुई एक पार्श्वनाथ की मूर्त्ति। मूर्त्ति काफी बड़ी है।

पृ० २६३

# चेलियामा की सराक संस्कृति

श्री युधिष्ठिर माजी

सराक या श्रावक संस्कृतियुक्त प्राचीन शिल्पकला सारे पुरुलिया अंचल में बिखरी हुई है। अनुसन्धान करने पर प्रायः प्रति ग्राम से ही उस समय की सराक संस्कृति के निदर्शन खोजे-पाए जा सकते हैं। दामोदर के तटवर्ती अंचल का चेलियामा तो एक समय सराक संस्कृति का एक विराट् पुराक्षेत्र ही बन गया था। तेलकूपी के शिल्प संस्कृति के सुवर्णयुग के साथ जुड़ी थी चेलियामा की सराक संस्कृति।

चेलियामा पुरुलिया जिला का एक प्राचीन ग्राम है। मन्दिर शिल्प और भास्कर्य शिल्प के लिए चेलियामा प्रसिद्ध है। चेलियामा से मात्र मील भर दूर वाँदा नामक स्थान के पलाश वन में मस्तक उठाए आज भी खड़ा है सराक संस्कृति के निदर्शन स्वरूप गगनस्पर्शी एक विशाल मन्दिर जो कि साधारण मनुष्यों की भाषा में है देउल। बहुत दूर से ही देखा जा सकता है इस देउल का शीर्षदेश। इस मन्दिर का शिखर उस दूरी से ही शिल्प रसिकों को इधर आने का संकेत करता रहता है। किन्तु मन्दिर जाने का कोई अच्छा रास्ता नहीं है। एक लम्बी अवधि से अवहेलित अनादृत रहने के कारण मन्दिर के चारों ओर पलाश का घना जंगल उग आया है। अतः मनुष्य वहाँ अकेले जाने में डरता है। प्रकृति के विकट राज्य में रास्ता खो बैठना भी विचित्र नहीं है। फिर भी वाँदा ग्राम के पास से वर्त्तमान में एक छोटा रास्ता बन गया है।

मन्दिर के सर्वांग में तेलकूपी के मन्दिर की छाप है। यह करीब ४० फुट ऊँचा है। इसके निर्माण में जिन शिलाखण्डों को व्यवहृत किया गया है वे तेलकूपी के मन्दिरों के शिलाखण्डों से मिलते हैं। मन्दिर का आकार भी प्रायः एक-सा ही है। तेलकूपी के मूल भैरवनाथ का मन्दिर आज नहीं रहा फिर भी कुछ दूरी पर जो एक प्राचीन मन्दिर खड़ा है उस मन्दिर के मॉडल से मिलता-जुलता होने पर भी इस की ऊँचाई बहुत अधिक है। तदुपरान्त तेलकूपी के मन्दिर के चारों ओर प्रायः एक ही किस्म के भास्कर्य शिल्प के निदर्शन पाए जाते हैं। किन्तु चेलियामा के इस मन्दिर के चारों ओर के अलंकरण चार प्रकार के हैं। मन्दिर के शीर्षदेश पर मात्र एक शिलाखण्ड से खोदा हुआ एक विराट् धर्म चक्र पद्मफूल की तरह आकाश में शोभा पा

रहा है। मन्दिर के गर्भ देश में कोई विग्रह नहीं है केवल एक बड़े आकार की वेदी है। शायद कभी यहाँ तीर्थंकर मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। वर्त्तमान में उसे कोई उठा ले गया है।

मन्दिर के चारों ओर करीब ४०० वर्ग मीटर तक नाना आकार के भग्न शिलाखण्ड पड़े हुए हैं। अधिकांश शिलाखण्ड स्तम्भ के आकार में निर्मित है। प्रायः डेढ़ से दो फुट व्यास के ये सब स्तम्भ ६/७ फुट लम्बे हैं पर हैं अलंकरण हीन। इसके अतिरिक्त करीब तीन फुट चौड़े और छः फुट लम्बे पट्ट आकार के कुछ शिलाखण्ड हैं। लगता है उनसे उस समय के किसी वासगृह की छत निर्मित की गयी थी। मन्दिर संलग्न अंचल में कुछ वासगृह या धर्म-साधनागृह निर्मित हुए थे। उसके भी कुछ निदर्शन चारों ओर बिखरे पड़े हैं। यहाँ की जमीन के नीचे भी बहुत आकार के भग्न शिलाखण्ड हैं। खुदाई के माध्यम से अनुसन्धान करने पर और भी कुछ ऐतिहासिक उपादानों का सन्धान पाया जा सकता है। फिर भी जिस उत्कृष्ट किस्म के शिलाखण्डों से इस मन्दिर का निर्माण किया गया था उस किस्म के शिलाखण्ड ये नहीं हैं। ये तो स्थानीय सख्त शिलाओं से बने हैं. सम्भवतः मन्दिर निर्माण के परवर्ती काल में।

चेलियामा का यह मन्दिर आज की ही तरह पहले भी अवहेलित ही था। पुरुलिया के बहुत प्राचीन जैन पुराक्षेत्रों की कथा ने इसके पूर्व मिस्टर ई० टी० डल्टन, मिस्टर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर, मिस्टर कूपलैण्ड, मि० जी० वी० बेगलर प्रभृति पण्डितों की रचनाओं में स्थान पाया है किन्तु स्थान नहीं पा सका चेलियामा का यह मन्दिर जबकि यह मन्दिर तेलकूपी से अधिक दूर नहीं है।

अतीत के पुराक्षेत्रों के साथ चेलियामा का कोई सम्बन्ध नहीं था ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। चेलियामा है पाड़ा और तेलकूपी का मध्यवर्ती अंचल। ताम्रलिप्त से पाकविड़रा, बुधपुर होते हुए जो रास्ता बनारस की ओर चला गया है उसी की एक शाखा छड़रा, पाड़ा से होती हुई चेलियामा के बीच से गुजर कर कतरास गढ़ की ओर चली गयी है। इसी रास्ते की एक और शाखा दालमी से अयोध्या के पहाड़ी अंचलों से गुजरती हुई बोड़ाम होकर पालगंज की ओर बढ़ गयी है। फिर ताम्रलिप्त से घाटाल, विष्णुपुर, छातना, रघुनाथपुर, तेलकूपी, झरिया, राजायमाली और राजगीर की ओर जो रास्ता गया है उसको भी संयुक्त किया था चेलियामा ने।

चेलियामा के पुराक्षेत्र में कोई तीर्थंकर मूर्त्ति दिखाई नहीं पड़ती। किन्तु चेलियामा ग्राम के मध्य कुछ भग्न शिलाखण्ड दृष्टिगत होते हैं। ये सब सड़क के किनारे जमीन में गाड़ कर रखे हुए हैं। यहाँ से काफी दूर रक्षतपुर ग्राम में पड़ी हुई है क्षय हुई एक पार्श्वनाथ की मूर्त्ति। मूर्त्ति काफी बड़ी है। ऊँचाई में प्रायः साढ़े चार फुट है। इसका कुछ भाग जमीन में गड़ा हुआ है। ग्रामीण बच्चे इस पर बैठ कर गप्प-शप्प करते हैं। कई अपने भोथरे कुल्हाड़ी जैसे अस्त्रों को इस पर घिस-घिस कर धार करते हैं। फलतः मूर्त्ति के माथे की तरफ का हिस्सा प्रायः क्षय होकर नष्ट हो गया है यद्यपि कुछ वर्ष पूर्व तक तो मूर्त्ति के मुख नेत्र आदि ठीक ही थे। न जाने किस काल के महान भाष्कर्य शिल्पी ने अपने मन का माधुर्य मिलाकर अहिंसा धर्म के साधक पुरुष के पवित्र देह विन्यास को कठोर शिलाखण्ड पर जीवंत कर डाला था। किन्तु उसी महान शिल्पी के महान देश के परवर्त्ती पुरुषों ने उन सब अमूल्य शिल्पकलाओं को बचाकर रखना भी प्रयोजनीय नहीं समझा। यही तथ्य आज हम हृदय में अनुभूत कर रहे हैं।

इसी गाँव के पास ही शांका ग्राम के पोखर के किनारे पड़ी है एक और तीर्थंकर मूर्त्ति। इसी पोखर के किनारे सायेर बूड़ी नाम से देवी रूप में पूजी जा रही है अन्य एक और भग्न तीर्थंकर मूर्त्ति। ये सब मूर्त्तियाँ चेलियामा की सराक संस्कृति से युक्त थीं ऐसा लगता है। बाद में किसी समय इन्हें चेलियामा के वांदा से स्थानान्तरित किया गया है।

तेलकूपी की शिल्प संस्कृति के साथ पातकूम राज्य के जमीदार विक्रमादित्य का नाम जुड़ा हुआ है। चेलियामा का मन्दिर तेलकूपी की संस्कृति के सम-सामयिक होने के कारण यहाँ के मन्दिर के साथ भी जुड़ा हुआ है राजा विक्रमादित्य। चेलियामा के एक व्यक्ति ने बताया कि यह मन्दिर विक्रमादित्य के समय निर्मित हुआ था। पर वह सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि विक्रमादित्य के समय से ही इस अंचल में सराक संस्कृति का प्रभाव कम होने लगा था। पन्द्रहवीं शताब्दी में यहाँ हिन्दू ब्राह्मण संस्कृति का विकास हुआ। १६९१ ई० के आस-पास किसी समय चेलियामा के राधा विनोद का ( राम राजा का ) विख्यात मन्दिर निर्मित हुआ लगता है। इस मन्दिर की दीवारों पर अद्भुत सुन्दर टेराकोटा का कार्य आज भी मनुष्य को मुग्ध करता है। पुरुलिया जिला के साधारणतः दो मन्दिर में टेराकोटा

का कार्य दृष्टिगत होता है। एक है यही चेलियामा का मन्दिर दूसरा, आचकोदा का मन्दिर।

ब्राह्मण धर्म की शाक्त संस्कृति का चरम विकास हुआ था इसी वांदा ग्राम के पास मौतोड़ गाँव में। गाँव का नाम है वांदा मौतोड़ा। विख्यात् जैन मन्दिर के प्रांगण से मात्र एक मील दूर अवस्थित है मौतोड़ की शाक्त संस्कृति का पीठ-स्थान। यहाँ के काली मन्दिर में सैंकड़ों पशुओं की बलि दी जाती है। पूजा के समय समस्त रात्रि बकरे की बलि होती है। यहाँ तक कि भैंसे की बलि भी दी जाती है। हजारों मेमनों के रक्त की नदियाँ बहने लगती है वांदा मौतोड़ गाँव की धरती पर। अहिंसा धर्म के साधना-स्थल सराक संस्कृति की केन्द्रभूमि से सुनायी पड़ती है उन मेमनों की आर्त्त चीत्कार। शायद इसीलिए अहिंसा धर्म के साधक पुरुष महान् तीर्थंकर मन्दिर छोड़कर जा बसे हैं किसी अज्ञात राज्य की पुण्य धरती पर। शून्य मन्दिरों के शीर्ष देश आज निर्वाक हुए अनन्त आकाश के वक्ष में अपना मुँह छिपाए हैं। फिर भी लगता है पशु रक्त से रंजित वांदा तथा चेलियामा के इस मन्दिर के हजारों शिलाखण्ड कई शताब्दियों पुरानी अहिंसा और प्रेम की कहानी आज भी मनुष्यों के कानों में कह जाते हैं। तभी तो कहा जाता है—सत्य है अहिंसा और प्रेम की लीला। हे महान् तीर्थंकर, तुम्हारी उसी कहानी को वहन किए है इस मौन मन्दिर की हर शिला।

# दीप-ज्योति/आत्म-ज्योति

मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर

दीप-ज्योति
आत्म-ज्योति का
अनुपम प्रतिविम्ब है;
आत्म-ज्योति
अलौकिक ज्योति का
साक्षात स्तम्भ है।
प्रथम
प्रभा-पुंज का प्रतीक है
द्वितीय
'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के समीप है।
विश्व में उभय प्रधान हैं
दोनों में प्रकाश है
यह अद्भुत द्वन्द्व समास है।

तिरोहित है
दीप-टेम[1] में
आत्म टेम,
आत्म-प्रेम।
बाह्यावलम्बन तुच्छ है
दृश्य में सूक्ष्म है
पर स्थूल प्रांजल है
निष्कलंक है/निर्मल है।
दीपावलम्बन से
क्रमशः
आत्म-उदय/आत्म उद्धार
आत्म-उत्थान/आत्म संस्कार।

---

[1] दीप-शिखा

जलाते दीपावली
आलोक आकांक्षी
आत्मार्थी जन/विचक्षण जन
अन्तस् निरीक्षण हेतु
एक पर एक
प्रतिदिन अनेक ।
दीप-ज्योति से
प्रकट करते
आत्म-द्योत/आलोक योग
कषाय-कचरा
तड़तड़ाकर राख हो जाता
तृष्णा-पतंग
जलकर नष्ट हो जाता
कर्म-तिमिर
नौ दो ग्यारह हो जाता
जीवन वातावरण में
परम प्रकाश हो जाता ।
अन्ततः
प्राप्त कर आत्म-दर्शन
होकर परमात्म शरण
कर लेते अमर-शरण ।

# पाटलिपुत्र की प्राचीन जैन कला

श्री अजय कुमार सिन्हा

जैन धर्म के इतिहास में बिहार प्रान्त का स्थान सर्वोपरि है। यहाँ छः जैन तीर्थंकर भगवान सुविधि नाथ, वासुपूज्य, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ तथा महावीर अवतरित हुए।[1] बाईस तीर्थंकरों ने बिहार की पावन भूमि पर ही निर्वाण प्राप्त किया। वस्तुतः जैन धर्म की धारा यहीं से फूट कर समस्त विश्व में फैली। प्राचीन भारत का इतिहास तीन चौथाई बिहार का ही इतिहास है तथा प्राचीन बिहार का इतिहास वस्तुतः मगध का इतिहास है।[2] इसी प्रकार प्राचीन भारतीय कला का भी इतिहास मुख्यतः मगध की कला का ही इतिहास है जिसका प्रारम्भ पाटलिपुत्र के राज प्रासाद से हुआ।

मगध नरेशों ने जैन धर्म को भरपूर प्रश्रय दिया। जिसके फलस्वरूप जैन धर्म, कला, साहित्य एवं दर्शन का चतुर्दिक विकास हुआ। राजा बिम्बिसार एवं अजातशत्रु जैन धर्म के समर्थक थे। इस नगर के मध्य में मगध नरेश उदायी ने भगवान नेमीनाथ का एक चैत्य बनवाया था।[3] प्रथम भारतीय सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य एवं सम्राट अशोक के पौत्र राजा सम्प्रति ने जैन धर्म एवं कला के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वयम् सम्राट अशोक ने गया जिलान्तर्गत बराबर की पहाड़ियों में आजीवकों (जैन मुनियों) के निमित्त गुफाओं का निर्माण पत्थर काट कर करवाया।[4] पाटलिपुत्र नगर में उस समय अवश्य ही जैन मंदिर था जिसमें जैन मूर्त्तियाँ थीं। कलिंग नरेश खारवेल[5] के एक अभिलेख से यह पता चलता है कि उसने पाटलिपुत्र से उस जैन प्रतिमा को पुनः प्राप्त कर लिया है जिसे नन्द राजा कलिंग विजय के उपरान्त पाटलिपुत्र लाये थे।

---

[1] राय चौधरी, पी. सी., जैनिज्म इन बिहार, पटना, १९५७।

[2] सिन्हा, बी. पी., भारतीय कला को बिहार की देन, पटना, १९५८।

[3] विविध-तीर्थकल्प, पाटलिपुत्र नगरकल्प, पृ० ६९।

[4] गुप्ता, एस. पी., दी रूट्स ऑफ इंडियन आर्ट, नई दिल्ली, १९८०, पृ० २०४।

[5] एपिग्राफिया इंडिका, भाग २०, पृ० ७२।

इस प्रकार पाटलिपुत्र जैन कला के उद्भव एवं विकास का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। इस नगर (वर्तमान पटना) के लोहानीपुर मुहल्ला से एक नग्न पुरुष का धड़ प्राप्त हुआ था। इसे यक्ष[६] कहा गया है। जैन धर्मावलम्बी प्राचीन काल में यक्ष पूजन के प्रबल समर्थक थे। इस नग्न धड़ पर, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय में प्रदर्शित है, मौर्य कालीन विशिष्ट वज्रलेप है। इसका सर एवं हाथ-पैर नग्न हैं। तुंग वक्षस्थल एवं क्षीण शरीर, पीठ प्रायः चौरस है तथा पीछे से ऐसी लगती है जिससे प्रतीत होता है कि इस प्रतिमा को किसी ताखा में रख कर पूजा की जाती होगी। यक्ष-पूजन लोक देवता के रूप में हिन्दू, बौद्ध तथा जैन, तीनों धर्मों में सहज भाव से प्रवेश पा गया था। परन्तु महाविलम्ब पद्धति के अनुसार इन्हें सदा उपदेवता का स्थान मिलता रहा। जैन धर्म में अनेक यक्ष तीर्थंकरों के शासन देवता के रूप में उल्लेखनीय है। पटना संग्रहालय में दो ऐसी यक्ष प्रतिमाएँ हैं जो लोहानीपुर यक्ष के नाम से विश्व के कला प्रेमियों के बीच में विख्यात् हैं। जैन कला का यह सर्वप्रथम नमूना है।

पाटलिपुत्र नगर निस्संदेह मौर्य शुंग काल में जैन धर्मावलम्बियों का एक मजबूत गढ़ बन चुका था। यहाँ आचार्य स्थूलभद्र तथा आचार्य भद्रबाहु[७] जैसे प्रबुद्ध जैन धर्मविद् उस काल में वर्तमान थे कुषाण काल में जैन गतिविधियाँ राजनीतिक कारणों से मथुरा नगर में केंद्रित हो गईं। अतएव पाटलिपुत्र नगर से जैन कला का कोई नमूना हमें प्राप्त नहीं हो सका है। परन्तु गुप्त कालीन भगवान पार्श्वनाथ[८] की आदमकद प्रतिमा पाटलिपुत्र नगर से प्राप्त हुई है। भगवान पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं। उनके मस्तक पर सप्तफणधारी नागराज धरणेन्द्र ने छत्र बना कर उन्हें सुरक्षित कर रखा है। उनकी ठुड्डी नुकीली, कान लम्बे तथा चेहरा गोलाकार गढ़ा गया है। दो अन्य जैन तीर्थंकर मूल नायक भगवान पार्श्वनाथ के पैर के उभय पार्श्व में ध्यानस्थ अंजलि मुद्रा में बैठे दिखाये गये हैं। इन दोनों मूर्त्तियों के पीछे गोलाकार प्रभामंडल बनाया गया है। इसकी तुलना राजगीर स्थित भगवान नेमीनाथ

---

[६] शिवराममूर्ति, सी., दि आर्ट ऑफ इण्डिया, न्यूयार्क, १९७७, पृ० १५४।

[७] विविध-तीर्थकल्प, पाटलिपुत्र नगरकल्प, पृ० ६९।

[८] सिन्हा, सी. पी., दि अर्ली स्कल्पचर्स इन विहार, पटना, १९८०, पृ० १३५।

प्रतिमा के नीचे उत्कीर्ण पद्मासन मुद्रा में बैठी दो जैन मूर्तियों से की जा सकती है जो गुप्तकालीन बतायी गई हैं। बलुआही पत्थर ( सैंड स्टोन ) में तराशी गई इस प्रतिमा को आरम्भिक गुप्त काल ( लगभग पांचवीं सदी ) का माना जा सकता है।

गुप्त काल के उपरान्त हमें जैन कला का एक भी नमूना पाटलिपुत्र से अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। सम्भवतः पाटलिपुत्र नगर को राजनीतिक प्रश्रय उस समय तक समाप्त हो चुका था। चीनी यात्री ह्वेन-सांग[९] ने भी अपने भ्रमण वृतांत में इस नगर के ध्वंसावशेषों का उल्लेख किया है। पुनः मध्यकाल में मुसलमानों का ध्यान इस नगर पर केन्द्रित हुआ। शेरशाह ने यहाँ किला बनवाया। व्यापारी के रूप में जैन समुदाय यहाँ आया तथा जैन धर्म पुनः मुखरित हुआ जिसका प्रमाण वर्तमान पटना के अनेक जैन मंदिर हैं जो प्राचीन जैन मंदिरों के ध्वंसावशेषों[१०] पर पुनर्निर्मित हुए।

इस प्रकार हम पाते हैं कि जैन कला जिसका जन्म पाटलिपुत्र नगर में हुआ अपनी प्राचीन परम्परा को अब भी संजोये हुए है।

---

[९] वाटरस, टी., ऑन युवान-च्वांग, भाग २, लन्दन, १९०५, पृ० ८७।

[१०] घोष, मनोरंजन, पाटलिपुत्र, पटना, १९२७, पृ० १४-१५।

# मध्य भारत का जैन पुरातत्व

श्री परमानन्द जैन, शास्त्री

श्रमण संस्कृति का प्रतीक जैन धर्म प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है, वह बौद्ध धर्म से अत्यन्त प्राचीन और स्वतन्त्र धर्म है। वेदों और भागवत आदि हिन्दू धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध जैन धर्म सम्बन्धी विवरणों के सम्यक् परिशीलन से विद्वानों ने उक्त कथन का समर्थन किया है। प्राचीन काल में भारत में दो संस्कृतियों के अस्तित्व का पता चलता है, श्रमण संस्कृति और वैदिक संस्कृति। मोहनजोदड़ों में समुपलब्ध ध्यानस्थ योगियों की मूर्त्तियों की प्राप्ति से जैन धर्म की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध होती है। वैदिक युग में व्रात्यों और श्रमणों की परम्परा का प्रतिनिधित्व जैन धर्म ने ही किया था। इस युग में जैन धर्म के आदि प्रवर्त्तक आदि ब्रह्मा आदिनाथ थे, जो नाभिपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनकी स्तुति वेदों में की गई है। इन्हीं आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती थे जिनके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है। जैन धर्म के दर्शन, साहित्य, कला, संस्कृति और पुरातत्व आदि का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

इतिहास में पुरातत्व का कितना महत्व है, यह पुरातत्वज्ञ भली भाँति जानते हैं। भारतीय इतिहास में मध्य प्रदेश का जैन पुरातत्व भी कम महत्व का नहीं है। वहाँ पर अवस्थित जैन स्थापत्य, कलात्मक अलंकरण, मन्दिर, मूर्त्तियाँ, शिलालेख, ताम्रपत्र और प्रशस्तियों आदि में जैनियों की महत्वपूर्ण सामग्री का अंकन मिलता है। यद्यपि भारत में हिन्दुओं, बौद्धों और जैनों के पुरातत्व की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है और ये सभी अलंकरण अपनी-अपनी धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु उन सब में कुछ ऐसे कलात्मक अलंकरण भी उपलब्ध होते हैं जो अपने-अपने धर्म की खास मौलिकता को लिए हुए हैं। जैनों और बौद्धों में स्तूप और आयाग पट भी मिलते हैं। अनेक जैन स्तूप गलती से बौद्ध बतला दिए गए हैं। आयागपट भी अपनी खास विशेषता को लिए हुए मिलते हैं। जैसे कंकालटीला मथुरा से मिले हैं। ये सभी अलंकरण भारतीय पुरातत्व की अमूल्य देन हैं।

मध्यप्रदेश के पुरातत्व पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि वहाँ अधिक प्राचीन स्थापत्य तो नहीं मिलते, परन्तु कलचूरी और चंदेल कालीन सौन्दर्या-

भिव्यंजक अलंकरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। उससे पूर्व की सामग्री विरल रूप में पाई जाती है, उस काल की सामग्री प्रायः विनष्ट हो चुकी है और कुछ भूमिसात् हो गई है। बौद्धों के सांची स्तूप और तद्गत सामग्री पुरानी है। विदिशा की उदयगिरि गुफा में जैनियों के तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा सछत्र अवस्थित थी, परन्तु वहाँ अब केवल फण ही अवशिष्ट है। मूर्त्ति का कोई पता नहीं चलता कि कहाँ गयी, परन्तु प्राचीन सामग्री के संकेत अवश्य मिलते हैं जिनसे जाना जाता है कि मौर्य और गुप्त काल के अवशेष मिलने चाहिए। कितनी ही पुरातन सामग्री भू-गर्भ में दबी पड़ी है और कुछ खण्डहरों में परिणत हुई सिसकियाँ ले रही हैं किन्तु हमारा ध्यान अभीतक उसके समुद्धरण की ओर नहीं गया।

जबलपुर के हनुमानताल के दिगम्बर जैन मन्दिर में स्थित एक कलात्मक मूर्त्ति शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान है। वैसी मूर्त्तियाँ महाकोशल में बहुत कम ही उपलब्ध होंगी कला की सूक्ष्म भावना, उदात्त एवं गम्भीर विचार और बारीक छैनी का आभास उसके प्रत्येक अंग से परिलक्षित होता है। इसी तरह देवगढ़ का विष्णु मन्दिर भी गुप्त कालीन कला का सुन्दर प्रतीक है। और भी अनेक कलात्मक अलंकरणों का यत्र तत्र संकेत मिलता है, जो तत्कालीन कला की मौलिक देन है। इस तरह उक्त तीनों ही सम्प्रदायों की पुरातात्विक सामग्री का अस्तित्व जरूर रहा है, परन्तु वर्त्तमान में वह विरल ही है।

## मध्य प्रदेश के पुरातात्विक स्थान और उनका संक्षिप्त परिचय

मध्य प्रदेश के खजुराहो, महोवा, देवगढ़, अहार, मदनपुर, वाणपुर, जतारा, रायपुर, जबलपुर, सतना, नरवारगढ़, ग्वालियर, भिलसा, भोजपुर, मऊ, धारा, बडवानी और उज्जैन आदि पुरातत्व की सामग्री के केन्द्र स्थान हैं। इन स्थानों की कलात्मक वस्तुएँ चन्देल और कलचूरी कला का निर्देशन करा रही हैं, यद्यपि मध्य प्रदेश में जैन शास्त्र भण्डारों के संकलन की विरलता रही है। पाँच-सात ही ऐसे मिलते हैं जहाँ अच्छे शास्त्र भण्डार पाए जाते हैं पर अच्छा संकलन नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि वहाँ भट्टारकीय परम्परा का प्रभाव अधिक नहीं हो पाया है। जहाँ-जहाँ भट्टारकीय गद्दियाँ और उनके विहार की सुविधा रही है वहाँ-वहाँ अच्छा संग्रह पाया जाता है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का जैसा संकलन राजस्थान, गुजरात, दक्षिण भारत तथा पंजाब के कुछ स्थानों में पाया जाता है वैसा मध्य प्रदेश में नहीं

मिलता। मध्य प्रदेश के जिन कतिपय स्थानों के नामों का उल्लेख किया गया है उनमें से कुछ स्थानों का यहाँ संक्षिप्त परिचय देना ही इस लेख का विषय है। यद्यपि मालव प्रान्त भी किसी समय जैन धर्म का केन्द्र स्थल रहा है और वहाँ अनेक साधु-सन्तों और विद्वानों का जमघट रहा है ; खासकर विक्रम की १० वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी तक वहाँ दिगम्बर जैन साधुओं आदि का अध्ययन, अध्यापन तथा विहार होता रहा है, और वहाँ अनेक ग्रन्थों की रचना की गई है। साथ ही अनेक प्राचीन उत्तुंग मन्दिर और मूर्त्तियों का निर्माण भी हुआ है, परन्तु राज विप्लवादि और साम्प्रदायिक व्यामोह आदि से उनका संरक्षण नहीं हो सका है। अतः कितनी ही महत्व की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री विलुप्त हो गई है। जो अवशिष्ट बच पाई है उसका संरक्षण भी दूभर हो गया है। और बाद में उन स्थानों में वैसा मजबूत संगठन नहीं बन सका है, जिससे जैन संस्कृति और उसकी महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन और संरक्षण किया जा सकता है।

खजुराहो—यह चन्देलकालीन उत्कृष्ट शिल्पकला का प्रतीक है। यहाँ खजूर के वृक्ष होने के कारण खर्जुरपुर नाम पाया जाता है। खजुराहो जाने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग झाँसी मानिकपुर रेलवे लाइन पर हरवालपुर या महोवा से छतरपुर जाना पड़ता है और दूसरा मार्ग झाँसी से बीना सागर होते हुए मोटर द्वारा छतरपुर जाया जाता है और छतरपुर से जाने वाली सड़क पर से बीस मील दूर वमीठा में एक पुलिस थाना है। वहाँ से राजनगर को जो दस मील मार्ग जाता है उसके ७ वें मील पर खजुराहो अवस्थित है। मोटर हरवालपुर से तीस मील छतरपुर और वहाँ से खजुराहो होती हुई राजनगर जाती है।

यहाँ भारत की उत्कृष्ट सांस्कृतिक स्थापत्य और वास्तुकला के क्षेत्र में चन्देल समय की देदीप्यमान कला अपना स्थिर प्रभाव अंकित किए हुए है। चन्देल राजाओं की भारत को यह असाधारण देन है। इन राजाओं के समय में हिन्दू संस्कृति को भी फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिला है। उस काल में सांस्कृतिक कला और साहित्य के विकास को प्रश्रय मिला जान पड़ता है। यही कारण है कि उस काल के कला प्रतीकों का यदि संकलन किया जाए, जो यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है, उससे न केवल प्राचीन कला की रक्षा होगी बल्कि उस काल की कला के महत्व पर भी प्रकाश पड़ेगा और प्राचीन कला के प्रति जनता का अभिनव आकर्षण भी होगा क्योंकि कला कलाकार के

जीवन का सजीव चित्रण है। उसकी आत्म साधना कठोर पैनी और तद्स्वरूप के निखारने का दायित्व ही उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा एवं एकाग्रता का प्रतीक है। भावों की अभिव्यंजना ही कलाकार के जीवन का मौलिक रूप है, उससे ही जीवन में स्फूर्ति और आकर्षक शक्ति की जागृति होती है। उच्चतम कला के विकास से तत्कालीन इतिहास के निर्माण में पर्याप्त सहायता मिलती है।

बुन्देलखण्ड में चन्देल और कलचूरी आदि राजाओं के शासनकाल में जैन धर्म का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त रहा है और उस समय अनेक कलापूर्ण मूर्त्तियाँ तथा सैकड़ों मन्दिर का निर्माण भी हुआ है। खजुराहो की कला तो इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती ही है। यद्यपि खजुराहो में कितनी ही खण्डित मूर्त्तियाँ पायी जाती हैं, जो साम्प्रदायिक विद्वेष का परिणाम जान पड़ती हैं।

यहाँ मन्दिरों के तीन विभाग हैं। पश्चिमी समूह शिव-विष्णु मन्दिरों का है। इनमें महादेव का मन्दिर ही सबसे प्रधान है और उत्तरीय समूह में भी विष्णु के छोटे बड़े मन्दिर हैं। दक्षिण-पूर्वीय भाग जैन मन्दिरों के समूह से अलंकृत है। यहाँ महादेव जी की एक विशाल मूर्त्ति ८ फुट ऊँची और तीन फुट से अधिक मोटी होगी। वराह अवतार भी अतीव सुन्दर हैं। उसकी ऊँचाई सम्भवतः ३ हाथ होगी। वंगेश्वर मन्दिर भी सुन्दर और उन्नत है। काली का मन्दिर भी रमणीय है, पर मूर्त्तिमें माँ की ममता का अभाव दृष्टिगत होता है। उसे भयंकरता से आच्छादित जो कर दिया है, जिससे उसमें जगदम्बा की कल्पना का वह मातृत्व रूप नहीं रहा। और न दया क्षमा ही को कोई स्थान प्राप्त है जो मानव जीवन के खास अंग हैं। वहाँ के हिन्दू मन्दिर पर जो निरावरण देवियों के चित्र उत्कीर्ण देखे जाते हैं उनसे ज्ञात होता है कि उस समय विलासप्रियता का अत्यधिक प्रवाह बह रहा था। इसी से शिल्पियों की कला में भी उसे यथेष्ट प्रश्रय मिला है। खजुराहो की नन्दी मूर्त्ति दक्षिण के मन्दिरों में अंकित नन्दी मूर्त्तियों से बहुत कुछ साम्य रखती हैं। यद्यपि दक्षिण की मूर्त्तियाँ आकार-प्रकार में कहीं उससे बड़ी है।

वर्त्तमान में यहाँ तीन ही हिन्दू मन्दिर और तीन ही जैन मन्दिर हैं। उनमें सबसे प्रथम मन्दिर घंटाई का है। यह मन्दिर खजुराहो ग्राम की तरफ दक्षिण-पूर्व की ओर अवस्थित है, इसके स्तम्भों में घण्टियों की बेल बनी हुई है। इसी से इसे घण्टाई का मन्दिर कहा जाता है। इस मन्दिर की शोभा अपूर्व है।

दूसरा मन्दिर आदिनाथ का है। यह मन्दिर घण्टाई मन्दिर के हाते में दक्षिण-उत्तर पूर्व की ओर अवस्थित है। यह मन्दिर भी रमणीय और दर्शनीय है। इस मन्दिर में पहले जो मूल नायक की मूर्त्ति स्थापित थी वह कहाँ गई यह कुछ ज्ञात नहीं होता। तीसरा मन्दिर पार्श्वनाथ का है। यह मन्दिर सब मन्दिरों से विशाल है। इसमें पहले आदिनाथ की मूर्त्ति स्थापित थी। उसके गायब हो जाने पर उसमें पार्श्वनाथ की मूर्त्ति स्थापित की गई है। इस मन्दिर की दीवालों के अलंकरणों में वैदिक देवताओं की मूर्त्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। यह मन्दिर अत्यन्त दर्शनीय है और संभवतः दशवीं शताब्दी का बना हुआ है। इसके पास ही शांतिनाथ का मन्दिर है। इन सब मन्दिरों के शिखर नागर शैली के बने हुए हैं और भी जहाँ तहाँ बुन्देलखण्ड में मन्दिरों के शिखर नागर शैली के बने हुए मिलते हैं। ये मन्दिर अपनी स्थापत्यकला, नूतनता और विचित्रता के कारण आकर्षक हैं। यहाँ की मूर्त्ति कला, अलंकरण और अतुल रूपराशि मानव कल्पना को आश्चर्य में डाल देती है। इन अलंकरणों एवं स्थापत्यकला के नमूनों में मन्दिरों का वाह्य और अन्तर्भाव विभूषित है, जहाँ कल्पना में सजीवता, भावना में विचित्रता तथा विचारों का चित्रण इन तीनों का एकत्र संचित समूह ही मूर्त्तिकला के आदर्शों का नमूना है। जिननाथ मन्दिर के बाह्य द्वार पर संवत् १०११ का शिलालेख अंकित है जिससे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर चन्देल राजा धंगा के राज्यकाल से पूर्व बना है। उस समय मुनि बासवचन्द के समय में पाहलवंश के एक व्यक्ति पाहिल ने जो धंगराजा के द्वारा मान्य था, मन्दिर को एक बाग भेंट किया था जिसमें अनेक वाटिकाएँ बनी हुई थीं।[१]

शान्तिनाथ का मन्दिर—इस मन्दिर में एक विशाल मूर्त्ति जैनियों के १६ वें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ की है जो १४ फुट ऊँची है। यह मूर्त्ति शान्ति की प्रतीक है। इसकी कला देखते ही बनती है। मूर्त्ति सांगोपांग अपने दिव्य प्रशान्त रूप में स्थित है। और ऐसी ज्ञात होती है कि शिल्पी ने अभी बनाकर तैयार की हो। मूर्त्ति कितनी चित्ताकर्षक है यह लेखनी से परे की बात है। शिल्पी की बारीक छैनी से मूर्त्ति का निखरा हुआ वह कलात्मक रूप दर्शक को आश्चर्य में डाल देता है। और वह उसे अपनी ओर आकृष्ट करता हुआ उसे देखने की बार-बार उत्कण्ठा उत्पन्न कर रहा है। मूर्त्ति के अगल-बगल में अनेक सुन्दर मूर्त्तियाँ

---

[१] ओं संवत् १०११ समये ॥ निजकुल धवलोयं दि—

विराजित हैं जिनकी संख्या अनुमानतः २५ से कम नहीं जान पड़तीं। यहाँ सहस्रों मूर्त्तियाँ खण्डित हैं। सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण बहुत बारीकी के साथ किया गया है। इस मन्दिर के दरवाजे पर एक चौतीसा यंत्र है जिसमें सब तरफ से अंकों को जोड़ने पर उनका योग चौतीस होता है। यह यंत्र बड़ा उपयोगी है। जब कोई बालक बीमार होता है तब उस यंत्र को उसके गले में बाँध दिया जाता है ऐसी प्रसिद्धि है। भगवान शान्तिनाथ की इस मूर्त्ति के नीचे निम्न लेख अंकित है, जिससे स्पष्ट है कि यह मूर्त्ति विक्रम की ११ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की है।

सं १०८५ श्रीमान् आचार्यपुत्र श्री ठाकुर देवधर-सुत श्री शिवि-श्री चन्द्रेयदेवाः श्री शान्तिनाथस्य प्रतिमा कारितेति।

खजुराहो की खण्डित मूर्त्तियों में से कुछ लेख निम्न प्रकार हैं :

सं० ११४२ श्री आदिनाथाय प्रतिष्ठाकारक श्रेष्ठी जीवनशाह भार्या सेठानी पद्मावती।

चौथे नं० की वेदी में कृष्ण पाषाण की हथेली और नासिका से खण्डित जैनियों के बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ की एक मूर्त्ति है। उसके लेख से मालूम होता है कि यह मूर्त्ति विक्रम की १३ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रतिष्ठित हुई है। लेख में मूलसंघ देशीगण के पण्डित नागनन्दी के शिष्य पं० भानुकीर्त्ति और आर्यिका मेरुश्री द्वारा प्रतिष्ठित कराये जाने का उल्लेख किया गया है। वह लेख इस प्रकार है : सं० १२१५ माघ सुदी ५ रवौ देशीयगणे पण्डित नाह (ग) नन्दी तच्छिष्यः पंडित श्री भानुकीर्त्ति आर्यिका मेरुश्री प्रतिनन्दतु।

इस तरह खजुराहो स्थापत्यकला की दृष्टि से अत्यन्त दर्शनीय है।

[ क्रमशः

# त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[ पूर्वानुवृत्ति ]

सुबह होते ही सूर्य ने इस प्रकार उदयाचल के शिखर पर आरोहण किया मानो वह ऋषभ पुत्रों की रण क्रीड़ा का कौतुक देखना चाहता हो। अतः उभयपक्षों के सैन्य दल ने प्रभात हुआ समझकर जोर-जोर से रणवाद्य बजाना प्रारम्भ कर दिया। वह शब्द मन्दराचल से आहत समुद्र-सा अर्थात् समुद्र-गर्जन-सा या प्रलयकालीन पुष्करावर्त मेघ गर्जन-सा अथवा वज्राघात के कारण पर्वत से निकलने वाले शब्द-सा था। रणवाद्य के उस शब्द से दिग्समूह के हस्ती व्याकुल हो उठे एवं उनके कान खड़े हो गए। जल-जन्तु भयभीत हो गए, समुद्र क्षुब्ध हो गया, क्रूर प्राणी चारों ओर से दौड़ते हुए आकर गुफाओं में आश्रय लेने लगे। बड़े-बड़े साँप विवर में प्रवेश करने लगे। पर्वत कम्पित हो उठे और उनके शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे। पृथ्वी को धारण करने वाले कूर्मराज भय के मारे अपने कण्ठ और पावों को सिकोड़ने लगे। ऐसा लगा मानो आकाश ध्वंश हो रहा है। धरती फटी जा रही है। राजा के द्वार-पाल की तरह वाद्य से प्रेरित होकर दोनों पक्षों की सेनायें युद्ध के लिए प्रस्तुत होने लगीं। युद्ध के उन्माद से उनके शरीर उत्साह में फूल उठे। फलतः कवच की डोरियाँ टूटने लगीं अतः वीर सेनानी उन्हें हटाकर नवीन कवच पहनने लगे। कोई प्रेमवश अपने अश्व को कवच पहनाने लगा कारण वीर पुरुष स्वयं से अधिक अपने वाहन की रक्षा करते हैं, कोई अपने अश्व की जाँच करने के लिए उस पर चढ़कर उसे घुमाने लगा क्योंकि अशिक्षित और जड़ घोड़ा आरोही के लिए शत्रु समान होता है। कवच पहनाने के पश्चात् हेषारवकारी घोड़ों को कुछ सैनिक देवताओं की तरह पूजने लगे। कहा गया है—युद्ध में हेषारव जय को सूचित करता है। जिन्हें कवच रहित घोड़े मिले वे अपने कवच भी उतार-उतार कर रखने लगे। कारण पराक्रमी पुरुषों का वीर व्रत ऐसा ही होता है। किसी-किसी ने अपने सारथी से कहा—समुद्र में मछली की तरह, रणक्षेत्र में रथ को इस प्रकार चलाना कि वह कहीं रुके नहीं। यात्री जिस प्रकार पूरा पाथेय लेकर चलते हैं उसी प्रकार कितने ही वीर यह सोचकर कि युद्ध बहुत दिन चलेगा अपने रथों को अस्त्र-शस्त्रों से भरने लगे। कोई

स्वचिह्नांकित ध्वजा को इस प्रकार स्तम्भ से बाँधने लगे कि दूर से ही वे पहचाने जा सकें। कोई मजबूत धूरि युक्त रथों में शत्रु सैन्य रूपी समुद्र में राह बनाने के लिए जलकान्त रत्न से घोड़े जोतने लगे। कोई अपने सारथियों को मजबूत कवच देने लगे। कारण बिना सारथी के अश्वयुक्त रथ भी बेकार हो जाते हैं। कोई लौह कंकण श्रेणी के सम्पर्क से अर्थात् हाथी दाँत पर जो लौह कंकण पहराया जाता है उससे कठोर बने हस्ती दन्तों की अपनी भुजा की तरह पूजा करने लगे। कोई भविष्य में जय लक्ष्मी के निवास स्थान से ध्वजायुक्त हौदे हाथियों पर बाँधने लगे। कोई हस्तीगण्ड से तत्काल प्रवाहित मद को शुभ शकुन समझ कर कस्तूरी की तरह उससे तिलक करने लगे। कोई मानो हस्तीमद के गन्ध से भरी वायु को सहन न कर पा रहे हों ऐसी भावना से महादुर्धर मन रूपी हाथियों पर आरोहण करने लगे। सभी महावत मानो रणोत्सव के शृङ्गार वस्त्र हों ऐसे स्वर्ण वलय हाथियों को पहराने लगे। किसी-किसी ने हस्ती सूंड से भी ऊँचे नलयुक्त नील कमल की शोभा धारण करने वाले अर्थात् देखने में नीलकमल से लौह मुद्गर भी हाथी के दाँतों पर बाँधे। कोई महावत कृष्णलौह के तीक्ष्ण आच्छादन हाथी दाँत पर पहराने लगे जिससे वे यमराज के दन्तों से लगने लगें।

इसी समय राज्य अधिकारीगण आदेश देने लगे—"सैन्यदल के पीछे अस्त्र-शस्त्र भरी गाड़ियाँ एवं माल लदे ऊँट शीघ्र ले जाओ अन्यथा क्षिप्र शस्त्र निक्षेपकारी वीरों के पास अस्त्र नहीं रहेंगे। कवच लदे ऊँटों को भी ले जाओ कारण अनवरत युद्धरत सैनिकों के पहने हुए कवच टूटेंगे। रथियों के पीछे दूसरे प्रस्तुत रथ ले जाओ। कारण अस्त्र प्रहार से रथ इस प्रकार टूट जाते हैं जैसे पर्वत के आघातों से। आगे के अश्वों के क्लान्त हो जाने पर अश्वारोही अन्य अश्वों पर आरोहण कर युद्ध जारी रख सकें इसलिए शत-शत अश्व अश्वारोहियों के पीछे ले जाने के लिए तैयार करो। प्रत्येक मुकुटबद्ध राजा के पीछे जाने के लिए हाथियों को सज्जित करो। क्योंकि युद्ध में एक हस्ती से काम नहीं चलता। सैनिकों के पीछे जल ले जाने के लिए बैल प्रस्तुत करो। कारण युद्ध के श्रमरूपी, ग्रीष्म ऋतु के ताप से तपे वीरों के लिए वे प्रपालिकाओं के कार्य करेंगे। औषधिपति चन्द्रमा के भण्डार तुल्य और हिमगिरि के सार रूप सद्य प्रस्तुत व्रण संरोहिणी औषधों के थैले उठाओ।"

इस प्रकार इनके कोलाहल से रणवाद्य के शब्द रूप महासागर में ज्वार आ गया। उस समय समस्त संसार चारों ओर से आते शब्दों से शब्दमय और

चमकते अस्त्रों-शस्त्रों से जैसे लौहमय हो ऐसा लगने लगा। मानो अपनी आँखों से देखा हो ऐसे प्राचीन पुरुषों के चरित्र स्मरण करवाने वाले व्यास की तरह रण निर्वाह की अर्थात् भली भाँति किए हुए युद्ध फल का वर्णन करने वाले नारद ऋषि की तरह सैनिकों को उत्साहित करने के लिए युद्ध में आगत शत्रुपक्ष के वीरों की प्रशंसा करने वाले चारण भाट प्रत्येक रथ और प्रत्येक अश्व के पास पर्व दिनों की तरह जाने लगे और उच्च स्वर में प्रशंसा गीत गाते हुए निर्भय बने रणक्षेत्र में घूमने लगे।

इधर राजा बाहुबली स्नान कर देवपूजा करने के लिए देवालय गए। महापुरुष किसी भी परिस्थिति में घबड़ाते नहीं है। देव मन्दिर में जाकर जन्माभिषेक के समय इन्द्र जिस प्रकार प्रभु को स्नान कराते हैं उसी प्रकार बाहुबली ने ऋषभदेव की प्रतिमा का सुगन्धित जल से स्नान कराया। फिर कषायरहित परम श्रद्धा सम्पन्न उन्होंने दिव्यगन्ध युक्त कषाय वस्त्र से श्रद्धा सहित उस प्रतिमा का मार्जन किया। दिव्य वस्त्रमय कवच की रचना कर रहे हों इस भाँति यक्ष कर्दम का लेपन किया और सुगन्ध में देववृक्षों के फूलों की माला की सहोदरा हो ऐसे विचित्र पुष्पों की माला पहनायी। सुवर्ण धूप दानी में दिव्य धूप जलाया। उस धुएँ से ऐसा लगा मानों वे कमल से पूजा कर रहे हैं। फिर मकर राशि में सूर्य आ गया है इस प्रकार उत्तरीय वस्त्र से प्रकाशमान आरती को प्रताप की भाँति ग्रहण कर प्रभु की आरती की। अन्ततः करबद्ध होकर आदिश्वर भगवान को प्रणाम कर भक्ति भाव से इस प्रकार स्तुति करने लगे।

"हे सर्वज्ञ, मैं अपना अज्ञान दूर कर आपकी स्तुति करता हूँ कारण आपके प्रति जो मेरी दुर्वार भक्ति है उसने मुझे वाचाल बना दिया है। हे आदि तीर्थेश, आपकी जय हो। आपके चरण नखों की कान्ति संसार रूपी शत्रु द्वारा तप्त प्राणी के लिए वज्र निर्मित पिंजड़े के तुल्य है। हे देव, आपके चरण कमलों को देखने के लिए राजहंस की तरह जो सब प्राणी दूर से आते हैं वे धन्य हैं। शीतार्त व्यक्ति जिस प्रकार सूर्य की शरण लेता है उसी प्रकार इस भयंकर संसार के दुःख से पीड़ित विवेकी पुरुष सर्वदा एक आपकी ही शरण में आते हैं। हे भगवन्, जो सानन्द अनिमेष नेत्रों से आपको देखते हैं उनके लिए परलोक में अनिमेष नेत्र (देवता) होना दुर्लभ नहीं है। हे देव, जिस प्रकार कज्जल लिप्त रेशमी वस्त्र की मलिनता दूध से स्वच्छ करने पर चली जाती है उसी प्रकार जीवों के कर्ममल आपके देशना जल से प्रक्षालित

होने पर ही जाती है। हे स्वामी, सर्वदा 'ऋषभ देव' इसी नाम का जाप किया जाता है। यह जप समस्त सिद्धियों को आकृष्ट करने वाले मन्त्र के समान है। हे भगवन्, जो आपका भक्ति रूपी कवच धारण कर लेता है उस व्यक्ति को न बज्र विद्ध कर सकता है न त्रिशूल छेदन कर सकता है।"

इस भाँति भगवान की स्तुति कर पुलकित देह से प्रभु को नमस्कार कर वे नृप शिरोमणि देव गृह से बाहर आए।

तदुपरान्त उन्होंने स्वर्ण एवं माणिक्य युक्त कवच धारण किया। वह विजय लक्ष्मी को वरण करने के लिए धारण किए कंचुक-सा प्रतीत होता था। उस देदीप्यमान कवच से वे ऐसे शोभित होने लगे जैसे सघन विद्रूम से समुद्र शोभित होता है। फिर उन्होंने पर्वत शिखर पर मेघमण्डल की भाँति शोभादायी सिरस्त्राण धारण किया। बड़े-बड़े लौह निर्मित तीर भरे दो तूणीर उन्होंने पीठ पर बाँधे। वो ऐसे लग रहे थे मानो सर्प भरा पाताल विवर हो। उन्होंने बाएँ हाथ में धनुष धारण किया। वह ऐसा लग रहा था मानो प्रलय काल में उत्तोलित यमदण्ड हो। इस भाँति प्रस्तुत राजा बाहुबली को स्वस्तिवाचक पुरुष 'आपका कल्याण हो' कहकर आशीर्वाद देने लगे। कुल की वृद्ध स्त्रियाँ "दीर्घायु बनो, दीर्घायु बनो" कहने लगीं। वृद्ध कुटुम्बी "आनन्द में रहो, आनन्द में रहो" बोलने और चारण भाट "चिरंजीवी रहो" उच्चस्वर में कहने लगे। इस प्रकार सबके शुभ कामना वाक्य सुनते हुए महाभाग बाहुबली ने आरोहकों का सहारा लेकर इस प्रकार हस्तीपृष्ठ पर आरोहण किया जैसे स्वर्गपति मेरु पर्वत पर आरोहण करते हैं।

उधर पुण्य बुद्धि भरत राजा भी शुभ लक्ष्मी के भण्डार तुल्य अपने देवालय में गए। वहाँ महामना भरत राजा ने भी आदिनाथ की प्रतिमा को दिग्विजय के समय लाए हुए पद्मद्रहादि तीर्थों के जल से स्नान करवाया। उत्तम कारीगर जैसे मणि का मार्जन करते हैं उसी प्रकार देवदूष्य वस्त्र से उन्होंने उस प्रतिमा का मार्जन किया। स्व यश से निर्मल पृथ्वी की भाँति हिमाचल कुमार आदि देवताओं द्वारा दत्त गोशीर्ष चन्दन का उस प्रतिमा पर विलेपन किया। लक्ष्मी के गृह तुल्य कमल से उन्होंने पूजा में नेत्र स्तम्भन की औषधिरूप आंगी रचना की। धूम्रवल्ली से मानों कस्तूरी की पत्रावली चित्रित कर रहे हों इस प्रकार प्रतिमा के सम्मुख उन्होंने धूप किया। मानो समस्त कर्म रूपी समिध का वृहद् अग्निकुण्ड हो ऐसी प्रज्वलित आरती थाल में लेकर प्रभु की आरती की। फिर करबद्ध होकर नमस्कार किया एवं ललाट पर अंजलि रखकर यह स्तुति करने लगे—

"हे जगन्नाथ, मैं अज्ञानी हूँ फिर भी स्वयं को योग्य समझकर स्तुति करता हूँ कारण बालक की अबोध चहचहाहट भी गुरुजनों को अच्छी ही लगती है। हे प्रभु, जिस प्रकार सिद्धरस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है उसी प्रकार आपका आश्रय ग्रहण कारी प्राणी कठिन कर्म बद्ध होने पर भी सिद्ध हो जाता है। हे स्वामी, वही प्राणी धन्य है जो अपने मन वचन काया का फल प्राप्त करने को आपका ध्यान करता है, आपकी स्तुति करता है, आपकी पूजा करता है। हे प्रभो, पृथ्वी पर विचरण करते समय मिट्टी पर पड़ी आपकी चरण-रज मनुष्य के पाप-रूपी वृक्ष को उखाड़ने में हाथी के समान आचरण वाली होती है। हे नाथ, स्वाभाविक मोह में जन्मान्ध सांसारिक प्राणी को विवेक रूपी दृष्टि देने में एक आप ही समर्थ हैं। जैसे मन के लिए मेरु पर्वत दूर नहीं है उसी प्रकार आपके चरण कमल में भ्रमर की तरह निवास करने वाले मनुष्य के लिए भी मोक्ष दूर नहीं है। हे देव, जिसप्रकार मेघ-वारि से जामुन वृक्ष के फल झर जाते हैं उसी प्रकार आपकी देशना रूप वाणी से प्राणी के कर्म रूपी बन्धन झर जाते हैं। हे जगन्नाथ, मैं बार-बार प्रणाम कर आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि आपकी कृपा से समुद्र के जल की तरह आपके प्रति मेरी भक्ति सर्वदा मेरे हृदय में अवस्थान करे।"

इस प्रकार आदिनाथ की स्तुति कर और भक्ति भाव से उन्हें प्रणाम कर वे देवालय से बाहर निकले।

फिर बार-बार स्वच्छ कर उज्ज्वल किया कवच चक्री ने अपने उमंग भरे शरीर में धारण किया। दिव्य माणिक्यमय कवच धारण कर भरत ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे माणिक्य द्वारा पूजित देव प्रतिमा शोभा पाती है। मध्य में ऊँचा और छत्र की तरह गोल स्वर्ण रत्न का शिरस्त्राण उन्होंने धारण किया। वह दूर से मुकुट की तरह लग रहा था। सर्प की भाँति अत्यन्त तेज सम्पन्न तीर भरे दो तूणीर उन्होने पीठ पर बाँधे। इन्द्र जिस प्रकार ऋजु रहित धनुष ग्रहण करता है उसी प्रकार उन्होंने शत्रु के लिए विषम हो ऐसा काल पृष्ठ धनुष अपने बाएँ हाथ में लिया। फिर सूर्य की भाँति अन्य तेजस्वियों के तेज को ग्रास करने वाले भद्र गजेन्द्र की तरह क्रीड़ारत पाँव फेंकते हुए विचरण करने वाला, सिंह की भाँति शत्रु को तृण तुल्य समझने वाला, सर्प की तरह दुःसह दृष्टि से भयभीत करने वाला, इन्द्र की तरह चारण देवता जिसकी स्तुति कर रहे हैं ऐसे भरत राजा ने निस्तन्द्र गजेन्द्र पर आरोहण किया।

कल्पवृक्ष की तरह याचकों को दान देते-देते सहस्र चक्षु इन्द्र की तरह चारों दिशाओं से आती अपनी सेना देखते-देखते राजहंस जैसे कमलनाल को ग्रहण करता है उसी भाँति एक-एक तीर ग्रहण करते-करते विलासी जिस प्रकार रतिवार्त्ता करते हैं उसी प्रकार रणवार्त्ता करते-करते आकाश में उदित सूर्य की तरह महा उत्साही और पराक्रमी दोनों ऋषभ पुत्र अपनी-अपनी सेना के मध्य उपस्थित हुए। उसी समय स्व सेना के मध्य स्थित भरत और बाहुबली जम्बूद्वीप के मध्य स्थित मेरू पर्वत की शोभा को धारण कर रहे थे। दोनों सेनाओं के मध्य स्थित भूमि निषध और नीलवंत पर्वत के मध्य स्थित महा विदेह क्षेत्रों की भूमि जैसी लग रही थी। कल्पान्त काल के समय पूर्व और पश्चिम समुद्र जिस प्रकार आमने-सामने वर्द्धित होते हैं उसी प्रकार दोनों ओर की सेनाएँ पंक्तिबद्ध होकर आमने-सामने आने लगीं। सेतुबन्ध जिस प्रकार जल-प्रवाह को इधर-उधर जाने से रोकता है उसी प्रकार द्वारपाल पंक्ति से बाहर आकर इधर-उधर जाने वाले सैनिकों को रोक रहा था। ताल के द्वारा संगीत में जैसे एक ही छन्द गाया जाता है उसी प्रकार राज्याज्ञा से समस्त सैनिक एक ही ताल में पाँव रखकर चल रहे थे इससे दोनों ओर की सेना ऐसी लग रही थी मानों एक शरीरी हो। वीर सैनिक पृथ्वी को लौह चक्र से विदारित कर रहे थे। लौह कुदाली की तरह अश्वों के तीक्ष्ण क्षुर से खनन कर रहे थे। लोहे के अर्द्धचन्द्र से ऊँटों के क्षुरों से विद्ध कर रहे थे। सैनिकों के जूतों की नालों से विदीर्ण कर रहे थे। क्षुरप्र वाण की तरह महिष और बलिवर्द के क्षुर से खोद रहे थे और मुद्गर के समान हाथियों के पाँवों से चूर्ण कर रहे थे। अन्धकार की तरह रज समूह से वे आकाश को आच्छादित कर रहे थे और सूर्य किरण के समान झिलमिलाते अस्त्र-शस्त्रों से चारों ओर आलोक विकीर्ण कर रहे थे। वे अतिभार से कूर्म पृष्ठ को कष्ट दे रहे थे। महावराह के ऊँचे नासाग्र को आनमित और अनन्त नाग के फणों के गर्व को खर्व कर रहे थे। वे ऐसे लग रहे थे मानों समस्त दिग्गज को कुब्ज कर रहे हों। अपने सिंहनाद से ब्रह्माण्ड रूपी पात्र को उच्च ध्वनिकारी बना रहे थे: उनके ताल ठोकने की उच्च ध्वनि ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करती-सी लग रही थी। परिचित ध्वज चिह्न से पराक्रमी स्व प्रतिस्पर्द्धी वीरों को पहचान कर नाम ले-लेकर उनका वर्णन कर रहे थे एवं अभिमानी और शौर्यवान वीर एक दूसरे को ललकार रहे थे। मकर जिस प्रकार मकर के सामने आता है उसी प्रकार हस्ती पृष्ठ आरूढ़ हस्ती पृष्ठ पर पर चढ़े हुओ के सम्मुख आ गये, तरंग जैसे तरंग से आहत होती है उसी प्रकार अश्वारोही अश्वारोही के

सामने आए। जिस प्रकार वायु वायु से प्रतिहत होती है उसी भाँति रथी-रथी के सम्मुख आए और शृंगी जैसे शृंगी पर आक्रमण करता है उसी प्रकार पैदल सेना पैदल सेना के सम्मुख आयी। इस भाँति समस्त वीर बर्छा, तलवार, मुद्गर और दण्ड आदि आयुधों को लेकर क्रोध पूर्वक एक दूसरे के सामने आए।

उसी समय त्रिलोक विनाश के भय से देवतागण आकाश में एकत्रित हुए और सोचने लगे दो हाथों-से इन दोनों ऋषभ पुत्रों में परस्पर युद्ध क्यों हो रहा है? फिर उन्होंने दोनों पक्ष के सैनिकों से कहा—हम जब तक तुम्हारे मनस्वी प्रभुओं को उपदेश दें तब तक युद्ध मत करो। यदि किसी ने किया तो उसे ऋषभ देव की शपथ है। देवताओं के ऋषभदेव की शपथ देने के कारण दोनों पक्षों के उत्साही सैनिक चित्र-लिखित से हो गए। वे सोचने लगे ये देवगण भरत के पक्ष के हैं या बाहुबली के पक्ष के।

[ क्रमशः

# स्वर्गीय कस्तूरचन्द जी ललवानी

गीता ललवानी

मेरे पिता जी प्रख्यात् अर्थशास्त्री, दार्शनिक, इतिहासवेत्ता व अधिकारी जैन विद्वान थे। उनकी शिक्षा अर्थशास्त्र में हुई थी। उनका हृदय बहुत संवेदनशील था। आप सतही ज्ञान से तृप्त नहीं होते थे अतः वस्तु की गहराई तक उतरते थे। यही कारण था आप बड़ी सहजता से दर्शन की ओर मुड़ गए। इसी प्रकार आप आकृष्ट हुए इतिहास की ओर भी। प्रचलित इतिहास आपको सन्तुष्ट नहीं कर पाया था। एतदर्थ इतिहास को भी आपने एक विचारक की दृष्टि से देखा। सत्य यदि कटु भी होता तो उसे व्यक्त करने में वे नहीं हिचकते। वयवृद्धि के साथ-साथ आप धर्म की ओर भी झुकते गए। जन्मना जैन होने के कारण आपकी रुझान जैन धर्म के प्रति ही रही। आप कई जैन मुनियों के सम्पर्क में आए एवं मूल आगम ग्रन्थों को प्राकृत भाषा में पढ़ना प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं उन ग्रन्थों को आपने अंग्रेजी में अनुदित भी किया ताकि जैनेतर जनता के लिए वे सुगम हो सकें।

मेरे पिता जी का जन्म राजशाही (बंगला देश) में सन् १९२१ की २१ जनवरी को हुआ था। मेरे दादाजी व्यापारी होते हुए भी पक्के व्यवसायी नहीं थे। वे सामान्य मुनाफा रखते थे। हृदय इतना दयालु था कि यदि कोई याचक आ जाता तो परिवार कि चिन्ता किए बिना उसको दान देकर तृप्त कर देते थे। इसमें मेरी दादी माँ का भी उन्हें पूर्ण सहयोग प्राप्त था। अपनी इस उदारता के चलते एक बार उन दोनों को पाँच वर्ष तक निरन्तर एकाहारी तक बनना पड़ा था। वे शिक्षा प्रेमी थे। अपने पुत्रों को पढ़ाने में वे किसी भी प्रकार की मानसिक संकुचितता को स्थान नहीं देते थे। उनकी यह भावना सार्थक हुई। कारण मेरे पिता जी मेधावी छात्र थे। उन्होंने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हें दो छात्रवृत्ति भी मिली जिसमें एक संस्कृत के लिए थी। इण्टरमिडियट परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्वर्णप दक व राजशाही कालेज से रजत पदक प्राप्त किया। आपने बी० ए० अर्थशास्त्र में आनर्स लेकर प्रथम श्रेणी से पास किया था। सन् १९४३ में आपने एम० ए० में भी कलकत्ता विश्वविद्यालय से फर्स्ट क्लास प्राप्त किया

था। आपका अध्यापक जीवन उसी वर्ष फरीदपुर राजेन्द्र कालेज से प्रारम्भ हुआ। १९४४ में आप पूना कालेज आफ कामर्स से जुड़े एवं १९४६ तक वहीं रहे। तत्पश्चात् आप कलकत्ता में जयपुरिया कालेज में प्राध्यापक के रूप में आए एवं कुछ समय तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी प्रशिक्षण किया। सन् १९४५ में आपका विवाह कमला सामसुखा से हुआ जो कि मुर्शिदाबाद के उच्च के एक और सम्पन्न घराने की लड़की थी।

सन् १९५१ में आपने दिल्ली पोलिटेकनीक में योग दिया। इसके पूर्व सन् १९४९ में आपने इन्स्टिट्युट आफ बैंकिंग एण्ड इकोनामिक्स की प्रतिष्ठा की जो कि आगे जाकर अर्थ वाणिज्य गवेषणा मन्दिर के रूप में विकसित हुआ। यहीं से आपने वर्त्तमान अर्थनीति की समस्याओं पर सैकड़ों पम्पलेट निकाले जिनकी छात्रों एवं शिक्षकों में काफी माँग रही।

दिल्ली में आप तीन वर्ष से अधिक नहीं रहे। सन् १८५४ में आप इण्डियन इन्स्टिट्युट ऑफ टेक्नालॉजी के तत्कालीन डाइरेक्टर डा० ज्ञानचन्द्र घोष के आग्रह पर खड़गपुर आए और वहीं अपना सम्पूर्ण जीवन बिताया। जब आप खड़गपुर में थे १९६०-६१ में T. C. M. प्रोग्राम में अमेरिका गए और नौ महीने तक वहीं अवस्थित रहकर वहाँ के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भाषण दिए। लौटते समय आपने लन्दन, पेरिस, बर्लिन, जेनेवा, रोम, एथेन्स आदि स्थानों का भी निरीक्षण किया। सन् १९८० में द्वितीय अन्तर्जातीय कांग्रेस आफ लीगल साइन्स का जो अधिवेशन नीदरलैण्ड के अमस्टारडम में हुआ था वहाँ भी आप आमंत्रित होकर गए एवं अपने विचार व्यक्त किए।

सन् १९८२ में आपने आई० आई० टी० के ह्युमनिटिज डिपार्टमेन्ट के अध्यक्ष के रूप में अवकास प्राप्त किया था। आपने अवकास प्राप्त समय के लिए भी एक प्रोग्राम बनाया था अपने असमाप्त ग्रन्थों एवं नये ग्रन्थों के सृजन के लिए। किन्तु भवितव्यता कुछ और ही थी। तभी तो पूर्णतः स्वस्थ एवं ऐसे कर्मठ व्यक्ति जिन्होंने जीवन में कभी दवाई खायी ही नहीं अचानक फरवरी १९८३ में करोनरी थ्रम्बोसिस से आक्रान्त हुए। फिर आश्चर्यजनक रूप में स्वस्थ भी हो गए पर वह स्वस्थता स्वल्पकालीन थी। अगस्त में जब पुनः कैरोनरी थ्रम्बोसिस का आक्रमण हुआ उसके साथ जूझते हुए अन्ततः १० दिसम्बर १९८३ को आप स्वर्गवासी हो गए।

त्रेष्ठ साल की अल्पायु में ही आपने बहुत से ग्रन्थ, निबन्ध, समीक्षाएँ

लिख डाली थीं। उन सबका परिचय इस लघु निबन्ध में देना सम्भव नहीं है। अतः मात्र उनके मुख्य-मुख्य ग्रन्थों का नाम यहाँ दे रही हूँ।

आपने भगवान महावीर की जो जीवनी लिखी वह अपने ही ढंग की निराली थी। इसमें उन्होंने उन्हें देव के रूप में नहीं एक महामानव के रूप में चित्रित किया है। आपने भगवान महावीर को मानव-देव नाम से अभिहित किया है।

आपने भगवती सूत्र जैसे विशाल ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद करना प्रारम्भ किया था। यह ग्रन्थ भगवान महावीर और उनके शिष्य इन्द्रभूति गौतम के कथोपकथन के रूप में ग्रंथित है। दुर्भाग्य से आप इस ग्रन्थ के मात्र तीन भाग ही प्रकाशित कर सके।

आपने दस वैकालिक, उत्तराध्ययण सूत्र, कल्प सूत्र आदि का भी अंग्रेजी में अनुवाद किया है। दस वैकालिक व कल्पसूत्र तो 'मोतीलाल बनारसीदास' से प्रकाशित भी हुआ है। दसवैकालिक सूत्र में सम्यक् चारित्र की विधि का व कल्पसूत्र में जिन चरित्र और समाचारी आदि का वर्णन है। उत्तराध्ययण सूत्र का आपने कविता में अनुवाद किया है। और इसे आपने भगवान महावीर की अन्तिम देशना कहा है कारण इसके ३६ अध्याय को विवृत करते-करते ही महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए थे।

इन आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने मुनिश्री महेन्द्र कुमार जी प्रथम की जैन कहानियों को अंग्रेजी में तीन खण्डों में अनुदित किया है। इन कहानियों के अनुवाद के पीछे आकर्षण था इन कथानकों के जैन तत्वों का। जैन दर्शन के मुख्य तत्व हैं कर्मवाद जो कि अन्य दर्शनों से कुछ स्वतन्त्र हैं। मनुष्य के कर्म उसे जन्म-जन्म में परिभ्रमण कराते हैं अन्ततः शुभ संयोग से वह साधु धर्म की ओर आकृष्ट होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

पूर्व ही कह आयी हूँ वे दर्शन की ओर आकृष्ट थे। अतः जब भी उन्हें समय मिलता वे दार्शनिक किताबें पढ़ते। अरअयेल, स्पेंगलर, टायनबी को अध्ययन करने के पश्चात् जब उनकी दृष्टि भारतीय इतिहास पर पड़ी तो उन्हें लगा कि हमारे ऐतिहासिकों ने हमें जो इतिहास दिया है वह सही नहीं है। अतः उन्होंने दार्शनिक पृष्ठ भूमि की सहायता से उसे नवीन रूप में लिखा। उन्होंने भारतीय इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया। पहले हिन्दू भारत का नाम दिया **Burden of the Past**। इसमें उन्होंने

दिखाया कि उस समय आर्य व अनार्य संस्कृति का जो सम्मिश्रण हुआ उसमें आर्य ही अधिक अनार्यीकृत हुए। दूसरे भाग का नाम Medieval Muddle। उस समय हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति परस्पर सम्मुखीन हुई। किन्तु मिली नहीं परस्पर विरोधी ही रही। तीसरे भाग का नाम दिया Sunset in Indial। इसमें उन्होंने दिखाया कि पाश्चात्य सभ्यता का विरोध हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति ने किया। परिणाम हुआ अराजकता। हमने पश्चिमी सभ्यता की अच्छाई को तो ग्रहण नहीं किया उसके विकृत रूप को ले लिया। इस ग्रन्थ के पहले दो भाग तो प्रकाशित हैं पर तीसरा अप्रकाशित है।

मेरे पिता जी ने जे० एम० केइन्स की General Theory का बंगला में अनुवाद किया जिसे कि १९८२ में वेस्ट बेंगल बुक बोर्ड ने प्रकाशित किया। जो इस ग्रन्थ को पढ़े हैं वे जानते हैं कि यह काम कितना कठिन था। उन्होंने श्रीमद् भगवत्गीता को भी बंगला पद्य में अनुदित किया है। वे कवि तो नहीं थे फिर भी उन्होंने जो अनुवाद किया है वह सरल व सुललित है।

मेरे पिता जी के बहुत से ग्रन्थ अधूरे एवं अप्रकाशित हैं। उन्हें प्रकाशित करके ही हम उनकी स्मृति को जीवंत रख सकेंगे जो कि मानवता की भी एक महती सेवा होगी।

# जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल निर्देश ॥ दिसम्बर १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी का पत्र' ( अनु० भँवरलाल नाहटा ), 'पटवों के संघ का वर्णन और श्री पूज्य जी का विहार' ( भँवरलाल नाहटा ), 'तुलसी रामायण : जैन रामायण से प्रभावित' (मुनिश्री चन्द्रप्रभ सागर), 'यमुना' ( राजकुमारी बेगानी ), 'मूलदेव चरित्र' ( भँवरलाल नाहटा ), 'अनेकान्त दृष्टि' ( महेन्द्र कुमार वैद्य ), 'श्री शान्ति कर स्तोत्र' ( मुनिश्री सुन्दर सूरि : अनु० भँवरलाल नाहटा )।

जर्नल अव दि ओरियन्टल इन्स्टिट्युट ॥ मार्च-जून १९८३

इस अंक में है 'Sources of Punyakusala's Bharat Bahubali Mahakavya' ( Satyavrat )।

जैन जगत ॥ दिसम्बर १९८३

इस अंक में है 'तीसरा नेत्र' ( युवाचार्य महाप्रज्ञ )।

श्रमण ॥ दिसम्बर १९८३

इस अंक में है 'तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ' ( गणेश प्रसाद जैन ), 'अहिंसा की सार्थकता' ( सौभाग्यमल जैन ), 'जैन आचार पद्धति में अहिंसा' ( डा० राजदेव दूबे )।

# जैन भवन प्रकाशन

## हिन्दी

१. अतिमुक्त (२य संस्करण)—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — ८.००

२. श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — ३.००

३. नीलांजना—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — ७.००

४. चन्दन मूर्त्ति—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी — १०.००

५. चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया — ५.००

६. भगवान महावीर ( एलवम् ) — १०.००

## বাংলা

| | | | |
|---|---|---|---|
| ১. | অতিমুক্ত | —শ্রীগণেশ লালওয়ানী | ৪.০০ |
| ২. | শ্রমণ সংস্কৃতির কবিতা | —শ্রীগণেশ লালওয়ানী | ৩.০০ |
| ৩. | ভগবান মহাবীর ও জৈন ধর্ম | —শ্রীপূরণচাঁদ শ্যামসুখা | ২.০০ |

## English

1. Bhagavati Sutra ( Text with English Translation )
—Sri K. C. Lalwani
   - Vol. I ( Satak 1-2 ) — 40.00
   - Vol. II ( Satak 3-6 ) — 40.00
   - Vol. III ( Satak 7-8 ) — 50.00

2. The Temples of Satrunjaya
—James Burgess — 50.00

3. Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha
tr. by Sri Ganesh Lalwani — 1.50

4. Thus Sayeth Our Lord—Sri Ganesh Lalwani — 1.50

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

Vol. VII No. 9 : Titthayara : January 1984
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

*Hewlett's Mixture*

*for*

*Indigestion*

**DADHA & COMPANY**

*and*

**C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.**

**22 STRAND ROAD**

**CALCUTTA-700 001**